

मंजुल भारद्वाज का नया नाटक 'लोक-शास्त्र सावित्री' समता का यलगार !



मेरे पुराने मित्र मंजुल भारद्वाज का जब फोन आया कि २७ मार्च २०२१ को सुबह ११ :३० थाना के गडकरी रंगायतन में 'लोक-शास्त्र सावित्री' का मंचन है, तुम्हें आना है। मैं उलझन में थी कि कोरोना काल में पब्लिक की भीड़ में जाना सही होगा कि नहीं ? पता नहीं नाटक के लिए प्रेक्षक भी होंगे या नहीं। पर जब मैं रंगायतन पहुँची। मैंने देखा राज्य सरकार के मार्गदर्शन का पालन करते हुए ५०% प्रेक्षक नाटकगृह में उपस्थित थे। मंजुल का नाटक हाँउसफुल था। वाह! मंजुल वाह! तुमने कर दिखाया। कोरोना काल में जब सभी रंगकर्मी दुबक कर बैठे हैं, तुमने ३ जनवरी २०२१ सावित्रीबाई फुले के जन्मदिन पर 'लोक-शास्त्र सावित्री' प्रेक्षागृह में लाकर खड़ा कर दिया।

सावित्रीबाई फुले ने महाराष्ट्र के पूना में १८४८ में लड़कियों के लिए स्कूल खोला। मनुस्मृति ने हजारों साल से लड़कियों की स्कूल जाने पर पाबंदी लगा रखी थी। फूले दम्पती ने उन हजारों सालों की परम्परा को तोड़ दिया। इतना ही नहीं वर्णवाद को पहली बार फूले दम्पती ने चुनौती दी। धर्मशास्त्र, ब्राह्मणवाद, जातिप्रथा, जेंडर भेद पर आधारित समाज व्यवस्था को चुनौती देते हुए 'मानव' होने की वकालत की। मंजुल का नाटक यहीं से आकार लेता है। 'मानव' होने का ऐलान करता है। नाटक का प्रारम्भ गाने से होता है, "वैदेही हुई, द्रौपदी हुई, झाँसी की रानी हुई पर मुझे सावित्रीबाई होना है। बहिणाबाई जगानी है। सावित्रीबाई जगानी है। मेरे मन में यदि सावित्रीबाई जागरूक हुई, तो मन की सावित्रीबाई ढगमगाएंगी नहीं, मैं मानव बनकर जीऊँगी। 'मानवता' का यलगार है, ये नाटक। जिसमें औरतें 'मानव' बनकर जीना चाहती हैं। संविधान में उन्हें समानता का अधिकार दिया है लिंग आधारित भेदभाव नहीं किया है।

नाटक के लेखक, दिग्दर्शक मंजुल भारद्वाज ने लोक-शास्त्र सावित्री नाटक में बखूबी जेंडर भेद को बड़ी बारीकी से दिखाया है। जेंडर असमानता सामाजिक, सांस्कृतिक है, इसे मनुष्य ने बनाया है। जेंडर असमानता परिवर्तनशील है। यह समय, संस्कृति, परिवार के साथ बदल सकते हैं। जेंडर भेद को बदला जा सकता है। जिस प्रकार सावित्रीबाई फूले (जिसे मंजुल भारत की प्रथम नारीवादी मानते हैं) ने बदला था। स्त्रियों को मानव रूप में स्थापित किया था।

नाटक का प्रमुख स्वर आक्रोश का है, नकार का है। यह आक्रोश और नकार का भाव पुरुषसत्तात्मकता के प्रति है। जिसने स्त्री को दोयम दर्जे का इंसान बनाया है। उसके मानवी रूप को उभरने से रोका है। नारी

जीवन की छटपटाहट, टूटन, शोषण, उत्पीड़न से कसमसाती सहनशीलता प्रस्तुत हुई है। नारी शरीर में अवतार लेते ही औरत माँ, बहन, चाची, मामी, नानी, ननद, पत्नी का विशेषण पा जाती है, पर उस नारी का 'स्व' कहाँ रह जाता है।

१० मिनट के इस नाटक में तीन वर्ग की महिलाओं को लिया गया है। पहली निम्न वर्ग की घरेलू कामकाज करने वाली महिला। सायली पावसकर ने जबरदस्त अभिनय किया है। 'घरों' में झाड़ू, पौधा, बर्तन साफ करके वह आर्थिक स्वतंत्रता तो पा गई है। पर उस 'अर्थ' पर उसका अधिकार नहीं है। घर में उसका पति दारू पीने के लिए उस पर हिंसा करके उसकी कमाई का पैसा छिन लेता है। पति उसे मारता है, वह भी पति को मारती है। रात को नशे में घर आकर पति उसे प्यार भी करता है। यह औरत सोचती है – "मारता है तो क्या, प्यार भी तो करता है। वह पितृसत्तात्मक नियंत्रण को नहीं समझ पाती।

दूसरी औरत मध्यम वर्गीय पढ़ी-लिखी स्कूल शिक्षिका है। कोमल खामकर ने मध्यम वर्गीय औरत की भूमिका बखूबी निभाई है। उसके चरित्र में एक ओर शिक्षा, नौकरी, जीवन मूल्यों में बदलाव की स्थिति है, तो दूसरी ओर परम्परागत संस्कार है। तेजी से तथाकथित पुरुष क्षेत्र में उसकी हिस्सेदारी तो बढ़ी पर अर्थसत्ता के बावजूद वह पुरुषसत्तात्मक वर्चस्व के कारण निर्णय लेने के अधिकार से वंचित है। अपनी सीमाओं का निर्धारण उसे स्वयं करना होगा, चिंतन करना होगा, तभी वह 'मानवी' रूप में स्वयं को स्थापित कर सकेंगी।



नाटक में, जन्म के समय से ही लड़के और लड़कियों को उतने अलग-अलग रूप में ढालने की किस प्रकार कोशिश की जाती है, उसे भी बताया है। लड़की को शिक्षित नहीं किया जाता क्योंकि लड़की बुढ़ापे का सहारा नहीं है, पराया धन है। लड़कों को भविष्य में परिवार का मुखिया, रोजी-रोटी कमाने वाला, सम्पत्ति का मालिक और प्रबंधक, राजनीति, धर्म, व्यवसाय और पेशे में सक्रिय व्यक्ति के रूप में देखा जाता है। दूसरी ओर लड़की से आशा की जाती है कि भविष्य में बच्चे पैदा करें, पालें, बीमारों और बूढ़ों की सेवा करें। सारा घरेलू काम करें। इस तरह पुरुष स्वामी बन जाता है और स्त्री दासी। इस तरह पुरुष-प्रधान समाज में नारी सदियों से दोगुना दर्जे की नागरिक बनी रही। सारे मूल्य, मान्यताएँ, परम्पराएँ, संबंध और रिश्ते-नाते स्त्री के द्वारा चुपचाप सहते रहने से चलते रहें।

नाटक में पैतृक सम्पत्ति में बेटियों को पिता की मृत्यु के बाद हिस्सा नहीं दिया जाता, उनका भी दृश्य दिखाया गया है। संविधान में कानूनन पिता की सम्पत्ति में बेटे जितना ही बेटा को अधिकार दिया गया है, पर माँ खुद पितृसत्तात्मक व्यवस्था की पोषक बन जाती है और बेटा से आग्रह करती है कि तुम कागज पर हस्ताक्षर कर अपने भाई को पिता की सम्पत्ति दे देना। तुम्हें क्या जरूरत है सम्पत्ति की। माँ की यह सोच परम्परागत पितृसत्तात्मक व्यवस्था से उपजी है।

नाटक की तीसरी नायिका नटी है, जिसे अश्विनी नांदेकर ने बड़े ओजस्वी तरीके से निभाया है। जो स्वयं स्वतंत्र है। 'मानव' रूप में अपने अस्तित्व को पा चुकी है। वह इन दोनों स्त्रियों को समझाती है कि पितृसत्तात्मक व्यवस्था सामाजिक ढांचों और रिवाजों की एक व्यवस्था है जिसके अंतर्गत पुरुष स्त्रियों पर अपना प्रभुत्व जमाते हैं, उनका दमन, शोषण और नियन्त्रण करते हैं। वह बताती है कि महिला में स्वचेतना जगाना होगा। स्व अस्तित्व को खोजना होगा। तभी वह 'मानवी' रूप में स्वीकार की जाएगी। महिलाओं को निर्भीक, स्वावलम्बी, अधिकार-चेता, अस्मिता, अस्तित्व के प्रति सजग और संवेनशील बनना होगा। इसके लिए जरूरी है नारी की साक्षरता, शिक्षा व चेतना का फैलाव, जिससे सामाजिक, सांस्कृतिक बदलाव आ सकें। यह 'नटी' स्त्री के आत्मविकास व आत्मविश्वास को जगाकर व्यक्तित्व निर्माण का लक्ष्य लेकर सामने आती है। अपने अंदर के सावित्री (यानि 'मानव' रूप में जीने की) को जगाओं का आह्वान करती है। तभी आप 'मानव' रूप में जीने का रास्ता खोज सकते हैं। जो जेंडर समानता पर आधारित होगा।

नटी कहती है मैं स्त्री रूप में जन्मी हूँ तो क्या हुआ। सेक्स प्रकृति की देन है। सेक्स को बदला नहीं जा सकता। मैं जन्म देती हूँ तो क्या हुआ ? मैं प्रकृति की चलाने वाली माँ हूँ तो क्या हुआ ? नर या मादा शरीर के साथ पैदा होने का अर्थ यह नहीं कि हमारा स्वभाव, बर्ताव, भूमिकाएँ, यहाँ तक की हमारा भाग्य उन्हीं के आधार पर निश्चित कर दिया जाए। नटी के द्वारा जेंडर असमानता पर कई सवाल उठाए गये हैं। और जबाब भी ढूँढा गया कि इन सब विशेषताओं के कारण स्त्री को समाज में दोगुना दर्जा क्यों ? मैं यह सब नहीं मानती। मैं इन्हें नकारते हुए 'मानव' रूप में जीना चाहती हूँ। मैं 'मानव' हूँ।

'नटी' के चरित्र द्वारा यह बताया गया है कि स्त्रियों और पुरुषों की मुक्ति प्रक्रिया आपस में जुड़ी हुई है। हमारे समाज में औरतों के लिए पितृसत्तात्मक पिंजरों को तोड़कर बाहर आना बहुत मुश्किल है, जब तक कि पुरुष भी उसी में एक आंदोलन शुरू न करें। पितृसत्ता के खिलाफ पुरुषों का आंदोलन किसी दया भावी पितृत्व के तहत नहीं होना चाहिए बल्कि खुद अपने मानवी सम्मान और गरिमा को दोबारा स्थापित करने के लिए। पुरुष, खुद अपना सम्मान कैसे कर सकते हैं यदि औरतों के लिए उनके मन में कोई सम्मान नहीं।

इस नाटक में मर्दानगी, पुरुष शक्ति, पुरुष यौनिकता तथा पुरुष ज्ञान व्यवस्था व सामाजिक संबंधों का पुरुषवादी नजरियाँ इन सभी को जांचा, परखा गया है और जांचने में मर्द व औरतें दोनों ही हैं।

नाटक के अन्त में नाटक के अन्य पात्र साक्षी खामकर, प्रियंका कांबळे, तुषार म्हस्के, नृपाली जोशी, सुरेखा सांळूखे तथा संध्या बाविस्कर सभी कलाकारों का समूह उभरता है। यह समूह भारतीय समाज का है। जिसमें स्त्री पुरुष दोनों हैं, जो जेंडर समानता की बात करते हैं। जो कहते हैं स्वतः मैं सावित्री को जगाओं, सावित्री सभी में पहुँच गई है, अब यहाँ से हम बाहर निकलेंगे 'मानव' बनकर जीने के लिए।

जैसा कि मंजुल भारद्वाज के 'थियेटर ऑफ़ रिलेवंस' का दर्शन है – “रंगकर्म सिर्फ माध्यम भर नहीं मानवता का पूर्ण दर्शन है।” यह नाटक भी अंत में संवाद बोलते-बोलते अपने सत्व में घुसता है। नाटक के अंत में जेंडर समानता की मांग है कि हममें से हर स्त्री और पुरुष अपने भीतर देखें और अपनी नकारात्मक पुरुषोचित्त (धौंस व दबावपूर्ण, दूसरे से होड़ तथा आत्मकेंद्रित) और स्त्रियोचित्त

(झुकनेवाली, डरी-सहमी, संकोची) विशेषताओं से ऊपर उठे। इसके लिए यह जरूरी है कि हम सभी लड़कें, लड़कियाँ, मर्द व औरतें स्त्रियों और पुरुषों की सकारात्मक विशेषताओं को बढ़ावा दे। हम में से हरेक को सशक्त और सहृदय, निडर और संवेदनशील, भावनामय और तर्कपूर्ण होना चाहिए। हर जगह औरतों तथा मर्दों को जेंडर समानता पाने के लिए मिलकर काम करना होगा, ताकि एक ऐसी दुनिया का निर्माण करें, जो सबके लिए न्यायी और शांतिपूर्ण हो। सभी लोग स्त्री-पुरुष 'मानव' रूप में जीवन जी सकें। सभी के अंदर सावित्रीबाई फूले का जन्म होना चाहिए।



Manjul Bhardwaj

Founder - The Experimental Theatre Foundation www.etfindia.org

www.mbtor.blogspot.com

Initiator & practitioner of the philosophy " Theatre of Relevance" since 12 August, 1992.